अध्याय – 11

विश्वरूप–दर्शन योग

कृपा करके आपने मुझसे,
जिस आध्यात्म का उपदेश किया,
सुनकर उसको, बोला अर्जुन,
मोह मेरा सब नष्ट हो गया (1)

हे कमलनयन, सुनी आपसे,
मैंने जीवों की प्रलय उत्पत्ति,
और सुनी आपकी महिमा,
तत्त्व की जिससे होती अनुभूति। (2)

हे परमेश्वर, हे पुरूषोत्तम,
कहते आप जैसा अपने को,
देखना चाहता हूं वैसा ही,
आपके उस दिव्य रूप को। (3)

समझते यदि आप मुझे योग्य,
अपने विश्वरूप दर्शन का,
हे योगेश्वर, दर्शन कराइए,
अपने उस अविनाशी रूप का। (4)

बोले भगवन, हे अर्जुन,
कर मेरे आलौकिक दर्शन,
सैकड़ों, हजारों दिव्य रूप,
नाना आकार, विविध वर्ण। (5)

देख अदिति के बारह पुत्र,
आठ वसु, ग्यारह रूद्रों को,
उन्चास मरूद, अश्विनी कुमार
और अन्य आश्चर्यमय रूपों को। (6)

इसी एक स्थान में स्थित,
देख सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड लोकों को,
भूत, वर्तमान और भविष्य,
देख देखना तू चाहे जो। (7)

नहीं देख पाएगा लेकिन तू,
मेरी योगशक्ति इन आंखों से,
प्रदान करता हूं दिव्य दृष्टि,
दिखता मेरा ऐश्वर्य जिस से (8)

संजय बोला, हे कुरू राज,
इस प्रकार कह प्रभु श्रीकृष्ण,
अपने ऐश्वर्यमय दिव्य रूप का,
कराने लगे वह अपूर्व दर्शन (9)

अर्जुन ने उस अद्‌भुत दर्शन में,
अनेक मुखों व नेत्रों को देखा,
नाना अलौकिक आभूषण देखे,
अनेक दिव्य शस्त्रों को देखा। (10)

उस अनन्त सर्वव्यापी रूप को,
दिव्य सुगन्ध से अनुलेपित देखा,
आश्चर्यमय, प्रकाशवान, दिव्य,
माला और वस्त्रों को देखा (11)

उदित हो जाए यदि गगन में,
सूर्य हजारों एक साथ भी,
उस विश्वरूप के तेज सम,
प्रकाशित हो कदाचित ही। (12)

Pentium (2) D\8.2.2007\Abi\Bhagvadgeeta\Bhagvadgeeta-2.p65

अनेक तरह विभाजित ब्रह्माण्ड,
देखे उस समय अर्जुन ने,
स्थित होकर एक जगह जो,
शोभित थे उस विग्रह में । (13)

आश्चर्य चकित वह रूप देख,
पुलकित हुआ अर्जुन का तन,
हाथ जोड़कर कहने लगा,
अर्जुन कर प्रभु को नमन। (14)

हे देवाधिदेव, आपके शरीर में,
देखता हूं मैं सम्पूर्ण जीवों को,
पद्मासीन बह्मा और शिवजी,
ऋषियों और दिव्य सर्पों को। (15)

हे विश्वेश्वर, अनेक हाथ,
पेट, मुख और नेत्र आपके,
ना आदि, ना मध्य, ना अन्त,
अनन्त हैं यह रूप आपके। (16)

चक्र, गदा, मुकुट युक्त,
तेजोमय सब ओर से,
देखने में अति गहन,
ज्योतिर्मय हैं सूर्य से । (17)

आप ही प्रभु, पुराण पुरुष हैं,
संरक्षक सनातन धर्म के,
जानने योग्य परम ब्रह्म हैं,
परम आश्रय इस जग के। (18)

आप ही हैं आदि पुरुष,
हे अनन्त सूर्य–चन्द्र नेत्रों वाले,
तपा रहे अपने तेज से,
यह विश्व, हे अनन्त भुजाओं वाले। (19)

सम्पूर्ण आकाश लोक व अन्तरिक्ष,
यह सब एक आपसे परिव्याप्त,
देख आपके इस उग्र रूप को,
सब हो रहे हैं व्यथा को प्राप्त । (20)

देव वृन्द ले शरण आपकी,
भयभीत हो कर रहे प्रार्थना,
महर्षि और सिद्ध समुदाय,
कर रहे आपकी स्तुति वन्दना। (21)

रूद्र, आदित्य, वसु, विश्व देव,
यक्ष, असुर, गन्धर्व, मरूदगण,
विस्मय विस्फारित हुए सभी,
देख रहे आपको, हे भगवन। (22)

व्याकुल हो देख रहे सभी,
आपके इस विकट रूप को,
अनेक मुख, बाहें, जंघा, उदर,
विकराल जाड़ों वाले आपको। (23)

नहीं पाता मैं शान्ति व धीरज,
देख गगनचुम्बी यह विश्वरूप,
भयभीत हो रहा अन्तः करण,
देख आपका यह तेजोमय रूप। (24–25)

कौरव, भीष्म, द्रोण, कर्ण,
दोनों पक्षों के योद्धा आदि,
देख रहा आपके मुख में,
प्रवेश कर रहे ये लोग सभी। (26–27)

जैसे नदियों के जल प्रवाह,
दौड़ते हैं सागर की ओर,
वैसे ही ये सब शूर वीर,
जा रहे आपके मुख की ओर। (28)

जैसे पतंगा नष्ट हो जाता,
गिरकर प्रज्वलित अग्नि में,
वैसे ही ये सम्पूर्ण लोग,
प्रवेश कर रहे आपके मुख में। (29)

प्रज्वलित मुखों से सम्पूर्ण लोकों को,
आप ग्रस और चाट रहे हैं,
प्रचण्ड प्रकाश और तेज से अपने,
पूरिपूर्ण कर जग तपा रहे हैं। (30)

कृपा कर कहिए आप कौन हैं,
प्रणाम करता हूं, हे उग्र रूपधारी,
प्रसन्न होइए, हे देवाधिदेव,
बतलाइए स्वयं को, हे विस्मयकारी। (31)

भगवन बोले मैं महाकाल हूं,
बढ़ा विनाश करने लोकों का,
तू युद्ध करे या कुछ ना करे,
होगा विनाश इन वीरों का। (32)

तू तो केवल निमित मात्र है,
ये हैं पहले से मृत्यु को प्राप्त,
कर विनाश अपने रिपुओं का,
फिर भोग तू सम्पूर्ण साम्राज्य। (33)

द्रोण, भीष्म और कर्ण आदि,
मारे हुए हैं मेरे द्वारा ये सभी,
उठ निर्भय हो, कर तू युद्ध,
निःसंदेह होगी जीत तेरी ही। (34)

भयावह वह विश्वरूप देख,
और सुन वचन श्रीभगवान के,
भयभीत, नमन कर बारम्बार,
अर्जुन बोला गदगद वाणी से। (35)

हे ऋषिकेश, आपके वन्दन से,
सम्पूर्ण विश्व अति हर्षित होता,
प्रणाम करते सभी सिद्ध प्राणी,
राक्षस दल पर भयभीत होता। (36)

बड़े हैं आप, आदि कर्ता हैं,
ब्रह्मा प्रणाम कैसे न करे,
आप ही सब कार्य कारण है,
अविनाशी व माया से परे। (37)

आदिदेव आप सनातन पुरूष हैं,
एक मात्र आश्रय इस जग के,
वेत्ता आप ही जानने योग्य हैं,
सम्पूर्ण सृष्टि व्याप्त आप से। (38)

अग्नि, वायु, प्रजापति, प्रपितामह,
वरूण, चंद्रमा, आप ही औंकार,
हजारों बार नमस्कार आपको,
फिर भी प्रभु बारम्बार नमस्कार। (39)

नमस्कार आगे से, पीछे से,
नमस्कार आपको, हे सर्वरूप।
व्याप्त किए हैं सारे जग को,
हे अनन्तवीर्य, हे सर्वरूप। (40)

महिमा न जान, हे प्रभु आपकी,
कहा, हे कृष्ण, हे यादव, हे सखे,
अपमान किया संग सोकर खाकर,
हे शरणागतवत्सल, क्षमा करें। (41–42)

परम पूजनीय गुरू और पिता हैं,
आप ही इस सम्पूर्ण जगत के,
होगा कैसे कोई अधिक आप से,
नही जब कोई समान आप के। (43)

पिता पुत्र के, प्रेमी प्रियतम के,
अपराध सहन करता जैसे,
हे नाथ, चरण शरण आपकी,
अपराध क्षमा करें मेरे वैसे। (44)

आपका यह अद्‌भुत रूप देख,
हर्षित हूं मैं पर व्याकुल चित्त,
हे नाथ, कृपा कर कीजिए,
प्रकट अपना वह रूप परिचित। (45)

शंख, चक्र, गदा, पदम युक्त,
माथे पर धारे दिव्य मुकुट,
हे विश्वमूर्ति, हे सहस्त्रबाहु,
दिखलाएं अपना रूप चतुर्भुज। (46)

भगवन बोले अनुग्रह कर,
दिखलाया तुझे यह विश्व रूप,
देखा नही किसी ने पहले,
तेजोमय मेरा यह अनन्त रूप। (47)

ना तपस्या, ना स्वाध्याय से,
ना यज्ञों से, ना ही दान से,
संभव दर्शन इस विश्वरूप का,
ना ही किसी अन्य साधन से। (48)

भंयकर मेरा यह रूप देख,
मत हो व्याकुल या मोहित,
प्रेम भरे मन से दर्शन कर,
फिर वही रूप मेरा परिचित। (49)

संजय बोला श्री कृष्ण ने फिर,
दिखलाया अपना चतुर्भुज रूप,
आश्वासित कर अर्जुन को फिर,
दिखलाया अपना द्विभुज रूप। (50)

शान्त हुआ अर्जुन का चित्त,
द्विभुज रूप में कर दर्शन,
प्रभु बोले इस रूप में मेरे,
देवों को भी दुर्लभ दर्शन। (51–52)

हे अर्जुन, मेरा यह मधुर रूप,
देख रहा जो दिव्य नेत्रों से,
ज्ञेय नहीं यह तत्त्व रूप में,
जप, तप, पूजा और दान से। (53)

यों जानना, प्रत्यक्ष देखना,
संभव है केवल अनन्य भक्ति से,
प्राप्त हूं मैं केवल उसको,
द्वेष नहीं जिसे किसी प्राणी से। (54–55)

Pentium (2) D\8.2.2007\Abi\Bhagvadgeeta\Bhagvadgeeta-2.p65

अध्याय – 12

भक्ति योग

अर्जुन बोला, हे प्रभु, बतायें,
कोन परम सिद्ध इन दोनों में,
भक्ति सहित जो आपको भजते,
या पूजते जो निराकार रूप में। (1)

भगवन बोले नित्य निरन्तर,
तत्पर हो एकाग्र मन से,
भजते मुझे जो श्रद्धा सहित,
परम सिद्ध वे मान्य मुझे। (2)

अविनाशी, निराकार, सर्वव्यापी को,
उपासते जो इन्द्रियां वश में कर,
सब जीवों के हित में संलग्न,
सफल होते वे भी मुझे प्राप्त कर। (3–4)

चित्त लेकिन जिनका आकृष्ट है,
परम सत्य के निराकार रूप में,
कठिनाई से प्राप्त होती है,
देहाभिमानियों को गति उस में। (5)

करता हूं अतिशीघ्र उद्धार,
मै अपने अनन्य भक्तों का,
सब कर्म कर मुझमे अर्पण,
आश्रय लेते जो भक्ति का। (6–7)

सम्पूर्ण बुद्धि से, अतः हे अर्जुन,
तू नित्य मेरा ही चिन्तन कर,
निःसंदेह तू पाएगा मुझे ही,
मन अपना मुझमें एकाग्र कर। (8)

समर्थ नहीं है यदि मन को,
मुझमें तू एकाग्र करने में,
भक्ति की शरण जगाएगी,
मुझे पाने की इच्छा तुझमें। (9)

कर्म कर सब मेरे लिए,
नहीं कर सकता यदि भक्ति,
पा जाएगा कर्म परायण हो,
तू मुझे प्राप्ति रूप सिद्धि। (10)

हो बुद्धि योग से युक्त यदि,
तू कर्म भी नहीं कर सकता,
तो आत्मस्वरूप में स्थित हो,
कर्म कर फल त्याग करता। (11)

संभव नहीं यदि यह भी,
तो ज्ञान का अनुशीलन कर,
श्रेष्ठ मगर है ध्यान ज्ञान से,
ध्यान से फल त्याग बढ़कर। (12)

द्वेष, स्वार्थ, ममता, हठ रहित,
हानि–लाभ द्वन्दों से विरक्त,
मन बुद्धि से रत भक्ति में,
मुझको प्रिय वह मेरा भक्त। (13–14)

भय रहित जिससे सभी जीव,
न जो स्वयं भयभीत होता,
निस्पृह, उदासीन, परित्यागी,
फल की नहीं कामना करता। (15–16)

Pentium (2) D\8.2.2007\Abi\Bhagvadgeeta\Bhagvadgeeta-2.p65

जो ना दुखी, ना हर्षित होता,
न ही द्वेष या कामना रखता,
शुभ–अशुभ, सब फल का त्यागी,
अति प्रिय मुझे भक्त वह लगता। (17)

शत्रु–मित्र और मान–अपमान,
सुख–दुख आदि जिसे समान,
दूर कुसंग से रहता हरदम,
करता नहीं जो मिथ्या अभिमान। (18)

सदा सतुंष्ट और मननशील,
जिसका ना कोई नियत निवास,
स्थिर गति, ज्ञान में स्थित
अति प्रिय मुझे वह मेरा दास। (19)

श्रद्धा सहित मेरे परायण हो,
भक्ति योग से दृढ़ निश्चय,
सेवन करता जो ज्ञानामृत,
भक्त मुझे वह प्रिय अतिशय। (20)

Pentium (2) D\8.2.2007\Abi\Bhagvadgeeta\Bhagvadgeeta-2.p65

अध्याय — 13

प्रकृतिपुरूष विवेक योग

पूछा अर्जुन ने, हे केशव,
प्रकृति, पुरूष, क्षेत्र, क्षेत्रज्ञ,
कृपया बतलाए क्या ज्ञान है,
क्या उसके प्रयोजन का तत्त्व। (1)

प्रभु बोले, हे कुन्तीनन्दन,
यह शरीर क्षेत्र कहा जाता,
क्षेत्रज्ञ उसे ज्ञानी जन कहते,
इस क्षेत्र को जो है जानता। (2)

हे अर्जुन, सब देहों में,
मुझको ही तू क्षेत्रज्ञ जान,
देह, देही का भेद जानना,
मेरे मत में है यथार्थ ज्ञान। (3)

इस क्षेत्र का स्वरूप, विकार,
और इसका कारण, अर्जुन,
क्षेत्रज्ञ का भी स्वरूप, प्रभाव,
तेरे लिए कहता हूं सुन। (4)

ऋषियों द्वारा व वैदिक मन्त्रों में,
भलीभांति यह ज्ञान वर्णित है,
वेदान्त सूत्रों में विशेष रूप से,
कहा गया यह ज्ञान विदित है। (5)

पंच महाभूत*, अंहकार, बुद्धि,
अव्यक्त प्रकृति, और एक मन,
दस इन्द्रियां, पांच विषय** सहित,
चोबीस तत्त्वों का यह संरचन। (6)

इच्छा द्वेष, सुख और दुख,
स्थूल देह, धैर्य, जीवन लक्षण,
इस प्रकार विकारों सहित,
क्षेत्र का है यह संक्षिप्त वर्णन। (7)

विनम्रता, सदाचरण, सहनशीलता,
सरल व्यवहार और अंहिसा,
सदगुरू के शरणागत् होकर,
निश्छल भाव से सेवा करना। (8)

भीतर बाहर की पूर्ण शद्धि,
आत्म संयम और दृढ़ निष्ठा,
इन्द्रिय भोगों में अनासक्ति,
मिथ्याहंकार का त्याग सर्वथा। (9)

जन्म–मृत्यु, जरा–व्याधि में,
दुख दोषों का चिन्तन करना,
पुत्र, स्त्री तथा घर आदि में,
आसक्ति व ममता न रखना। (10)

* पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु व आकाश।
** रूप, रस, गन्ध, शब्द व स्पर्श।

Pentium (2) D\8.2.2007\Abi\Bhagvadgeeta\Bhagvadgeeta-2.p65

अनुकूल या प्रतिकूल प्राप्ति में,
चित्त की समता का होना,
अनन्य भाव से नित्य निरन्तर,
भक्ति भाव से भावित होना। (11)

एकान्त वास, विषय त्याग,
नित्य परम सत्य का ज्ञान,
मेरे मत में यही ज्ञान है,
इसके विपरीत सब अज्ञान। (12)

ज्ञेय तत्त्व कहता हूं अब मैं,
तृप्त होगा तू सुन के जिसे,
अनादि ब्रह्मतत्व आधीन मेरे,
जग के कार्य कारण से परे। (13)

परम सत्य वह सब ओर को,
हाथ पैर और मुख वाला है,
इस प्रकार स्थित है वह,
सबको व्याप्त करने वाला है। (14)

सब इन्द्रियों का मूल स्रोत,
धारक, पोषक, इन्द्रियां रहित,
सभी गुणों का स्वामी है वह,
नहीं फिर भी माया रचित। (15)

चराचर में सर्वत्र परिपूर्ण है,
जाना नहीं जाता, सुक्ष्म अति,
वही परम सत्य सबके समीप है,
वही चरम सत्य है दूर अति। (16)

पृथक–पृथक जीवों में स्थित,
फिर भी है विभाग रहित,
जन्म दाता, पालक, सहायक,
सब जीवों का करता हित। (17)

माया से अति परे अगोचर,
ज्योतिर्वानों का ज्योति है वह,
ज्ञान, ज्ञेय, ज्ञानगम्य है,
हृदय में सबके स्थित है वह। (18)

मेरे द्वारा इस तरह वर्णित,
क्षेत्र, ज्ञान, ज्ञेय का तत्त्व,
इसे जानकर मेरा स्वभाव,
पा जाता है मेरा भक्त। (19)

हे अर्जुन, प्रकृति और जीव,
दोनों को ही अनादि जान,
उनके विकारों और गुणों को,
प्रकृति से ही उत्पन्न जान। (20)

कही गई है यह प्रकृति,
प्राकृत कार्य कारणों की हेतु,
और जीवात्मा इस जग में,
सुख व दुख भोगने में हेतु। (21)

प्रकृति में स्थित जीवात्मा ही,
भोगता है विविध गुणों को,
गुणों के संग से ही जीवात्मा,
पाता है विविध जन्मों को। (22)

इस देह में जीव के साथ,
है एक और परम भोक्ता,
साक्षी और अनुमति दाता,
जानते जिसे सब परमात्मा। (23)

जीव व प्रकृति गुणों सहित,
ऐसे जो तत्त्व से जानता,
कैसे भी हो वर्तमान में,
पूर्वजन्म वह नहीं पाता। (24)

Pentium (2) D\8.2.2007\Abi\Bhagvadgeeta\Bhagvadgeeta-2.p65

कुछ ध्यान करते हृदय में,
विशुद्ध चित्त से परमात्मा का,
और कितने ही पाते उसको,
निष्काम कर्म या ज्ञान द्वारा। (25)

कुछ दूसरों से सुन कर,
भक्ति में तत्पर हो जाते,
मृत्युरूप संसार सागर से,
निश्चय वे भी तर जाते। (26)

जो भी चर–अचर दिखता है,
हे अर्जुन, तू निश्चित मान,
क्षेत्र–क्षेत्रज्ञ के संयोग से ही,
उसको तू उत्पन्न जान। (27)

जीवात्मा के संग परमात्मा,
सब जीवों में जो है देखता,
और जानता इनको अविनाशी,
वही वास्तव में यथार्थ देखता। (28)

परमात्मा को जीव मात्र में,
समभाव से जो स्थित देखता,
नहीं पतन होता फिर उसका,
परम गति को वह पा जाता। (29)

सभी कर्म प्राकृत देह द्वारा,
किए हुए ही जो है देखता,
जानता आत्मा को अकर्ता,
वही पुरूष यथार्थ देखता। (30)

पृथक–पृथक जीवों में जो,
परमात्मा का ही विस्तार देखता,
नहीं प्रभावित देह भेद से,
निश्चय ब्रह्म को वह पा जाता। (31)

यह दिव्य निर्गुण अनादि आत्मा,
सनातन व माया से परे है,
लिप्त नहीं होता जो कर्म में,
यह आत्मा कर्म से परे है। (32)

ज्यों आकाश सुक्ष्म होने से,
नहीं किसी से होता लिप्त,
वैसे ही यह ब्रह्मभूत जीव,
नहीं देह से होता लिप्त। (33)

हे अर्जुन, ज्यों सूर्य अकेला,
करता सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड प्रकाशित,
वैसे ही देह स्थित आत्मा,
उसे चेतना से करता आलोकित। (34)

देह से देही के भेद को,
बन्धन से मुक्ति साधन को,
जानते है जो तत्त्व द्वारा,
पा जाते मेरे परम धाम को। (35)

Pentium (2) D\8.2.2007\Abi\Bhagvadgeeta\Bhagvadgeeta-2.p65

अध्याय – 14

गुण त्रय विभाग योग

भगवन बोले तेरे लिए मैं,
फिर कहता हूं परम ज्ञान को,
जिसे जानकर मुनिजन सब,
प्राप्त हो गए परमधाम को। (1)

लेकर शरण इस ज्ञान की,
जीव मेरा स्वभाव पा जाते,
नहीं जन्मते सृष्टि काल में,
ना प्रलय में व्याकुलता पाते। (2)

महदबह्म नामक मेरी प्रकृति,
योनि है सब जीवों की,
इसमें जीवों के गर्भाधान से,
होती उत्पत्ति जीवों की। (3)

जितने भी शरीर होते हैं,
यह उनका उत्पत्ति स्थान,
मैं पिता हूं उन सबका,
करता बीज का गर्भाधान। (4)

सत्वगुण, रजोगुण और तमोगुण,
विद्यमान प्रकृति में रहते,
इस निर्विकार जीवात्मा को,
देह में यह गुण ही बांधते। (5)

निर्मल और ज्ञान का प्रकाशक,
सत्वगुण मुक्त है विकारों से,
लेकिन यह भी है बन्धनकारक,
सुख व ज्ञान की उपाधि से। (6)

कामजनित रजोगुण की उत्पत्ति,
होती आसक्ति और तृष्णा से
जीवात्मा को वह बांध देता,
सकाम कर्मफल के बन्धन से। (7)

मोहित करने वाला तमोगुण,
उत्पन्न होता है अज्ञान से,
देहधारी जीवों को बांधता यह,
आलस्य, निद्रा व प्रमाद से। (8)

ये तीनों गुण है बन्धनकारी,
रहती इनमें हर दम स्पर्धा,
कभी सत्वगुण, कभी रजोगुण,
कभी तमोगुण करता प्रभुता। (9–10)

सत्व गुण में देहद्वार सब,
प्रकाशित ज्ञान से हो जाते,
रजोगुण में लोभ, प्रवृति,
वासना इत्यादि बढ़ जाते। (11–12)

विवेक हीनता– निष्क्रियता,
प्रमाद और अज्ञान आदि,
बढ़ जाने पर तमोगुण के,
होती इनकी अभिव्यक्ति। (13)

सत्व गुण से उच्च लोक,
रजोगुण से मानव योनि,
तमोगुण में मरने वाला,
पाता पशु आदि ही योनि। (14–15)

Pentium (2) D\8.2.2007\Abi\Bhagvadgeeta\Bhagvadgeeta-2.p65

सात्विक कर्म से, हे अर्जुन,
अन्तःकरण की शुद्धि होती,
राजस कर्म से दुख मिलता,
तामस से अनर्थ प्राप्ति होती। (16)

सत्व गुण से सच्चा ज्ञान,
लोभ रजोगुण से होता,
आलस्य, अज्ञान, मोह, प्रमाद,
प्राप्त तमोगुण से होता। (17)

सत्व गुणी स्वर्गादि को जाते,
रजोगुणी पृथ्वी पर आते,
पर तमोगुण मे स्थित प्राणी,
अधम अधोगति ही पाते। (18)

देखेगा जब तू कर्मो में,
कर्ता केवल इन गुणों को ही,
और परे परमेश्वर इन से,
पाएगा परा प्रकृति तब मेरी। (19)

जो इस देह के उत्पत्ति कारक,
त्रिगुणों का उल्लघंन कर जाता,
जन्म–मृत्यु आदि दुखोः से छूट,
इसी जीवन में मुक्ति पा जाता। (20)

अर्जुन बोला किन लक्षणो से,
गुणातीत पुरूष भावित होता,
किस आचरण, किस साधन से,
त्रिगुणों से वह मुक्ति पाता। (21)

भगवन बोले जिसे द्वेष नहीं,
प्रवृति, निवृति, ज्ञान, मोह से,
उदासीन जो अविचलित रहता,
जान कार्य हो रहे गुणों से,

मिट्टी–सोना, निन्दा–स्तुति,
शत्रु–मित्र मे रखता समभाव,
त्याग दिए जिसने सकाम कर्म,
गुण करते नही उस पर प्रभाव। (22–25)

जो लीन अनन्य भक्तियोग में,
सदा मेरा ही भजन करता,
उल्लघंन कर गुणों का वह,
तत्काल ब्रह्मभूत हो जाता। (26)

अमर और अविनाशी ब्रह्म का,
हे अर्जुन मैं ही हूं आधार,
सनातन धर्म और परम सुख,
उनका भी मैं ही हूं आधार। (27)

Pentium (2) D\8.2.2007\Abi\Bhagvadgeeta\Bhagvadgeeta-2.p65

अध्याय – 15

पुरूषोतम योग

वृक्ष एक पीपल का जिसका,
मूल है ऊपर, नीचे शाखा,
जानता जो इसे तत्त्व से,
वेदों का वह मर्म जानता। (1)

त्रिगुण रूपी जल से सिंचित,
शाखाएं इसकी सर्वत्र फैली,
इन्द्रिय विषय रूप इसके पत्ते,
बन्धनकारी जड़ें नीचे फैली। (2)

अप्रत्यक्ष इसका ना आदि अन्त,
अतिदृढ़ है इसका आधार,
संसार रूपी यह वृक्ष काटने,
उठा वैराग्य रूपी दृढ़ कुठार। (3)

खोज फिर उस परम पद को,
उन आदि पुरूष की शरण ले,
अनादि काल से आश्रित, फैली,
पुरातन संसार प्रवृति जिन से। (4)

मुक्त हो जो मोह, कुसंग से,
निष्काम, अध्यात्म तत्त्व जानते,
द्वन्दों से मुक्त, भगवद् शरणागत,
ज्ञानी वे परम पद पा जाते। (5)

सूर्य, चंद्र और अग्नि जिसे,
नहीं प्रकाशित कर सकते,
पाकर वह मेरा परम धाम,
जीव जगत में नहीं लौटते। (6)

बद्ध जगत में है यह जीव,
मेरा ही शाश्वत भिन्न अंश,
कर रहा पर घोर संघर्ष,
मन और इन्द्रियों के संग। (7)

जैसे वायु ले जाता है,
गन्ध ग्रहण कर अपने साथ,
जीव वैसे ही देह त्याग,
इन्द्रियां ले जाता अपने साथ। (8)

नया जन्म पाने पर यह,
स्थूल शरीर ग्रहण करता,
इन्द्रियों व मन द्वारा फिर,
विषयों का यह सेवन करता। (9)

जीव जैसे यह देह भोगता,
और जैसे वह देह त्यागता,
मूढ़ उसे नहीं जान पाते,
ज्ञानी इसका अनुभव करता। (10)

योगी जन यतन करते हुए,
देह में स्थित आत्मा को देखते,
अशुद्ध चित वाले अज्ञानी पर,
कभी उसे नही देख सकते। (11)

हे अर्जुन, सूर्य में स्थित तेज,
प्रकाशित करता जो जग को,
चन्द्रमा और अग्नि में भी तू,
जान उपस्थित मेरे तेज को। (12)

Pentium (2) D\8.2.2007\Abi\Bhagvadgeet a\Bhagvadgeet a-2.p65

मैं ही प्रवेश कर धारण करता,
जीवों सहित सम्पूर्ण लोको को,
और अमृत मय चन्द्रमा होकर,
पोषण देता सब औषधियों को। (13)

प्राणियों के देह में स्थित,
मै वैश्वानर अग्नि रूप से,
प्राण और अपान के संग,
पचाता अन्न चार प्रकार के। (14)

स्मृति, ज्ञान और विस्मृति,
होता है सब मुझसे ही,
वेद, वेदज्ञ, ज्ञान और ज्ञेय,
मैं वेदो का प्रकाशक भी। (15)

चेतन जगत मे हर जीव के,
दो भाग है क्षर और अक्षर,
प्राकृत देह होती है नश्वर,
नित्य जीवात्मा होता अक्षर। (16)

उन दोनो से उत्तम लेकिन,
अविनाशी परब्रह्म परमेश्वर,
धारण, पालन जो करता,
सब लोकों में प्रवेश कर। (17)

क्षर और अक्षर दोनों से परे,
और श्रेष्ठ हूं उन सबसे,
अतः लोक और वेदों में हूं,
मैं प्रसिद्ध पुरूषोतम नाम से। (18)

हे अर्जुन, जो मुझे जानता,
इस प्रकार निश्चित पुरूषोतम,
सम्पूर्ण वेद का तत्त्व जानता,
पाता वह मेरी भक्ति उत्तम। (19)

प्रकट किया मैने यह ऐसे,
शास्त्रो का परम गोपनीय सार,
जिसे जान तत्त्व से प्राणी,
पाता बुद्धि, मिट जाते विकार। (20)

Pentium (2) D\8.2.2007\Abi\Bhagvadgeeta\Bhagvadgeeta-2.p65

अध्याय – 16

देवासुर सम्पद्विभागयोग

भगवन बोले, अभय, अहिंसा,
दिव्य ज्ञान का सेवन, निर्मलता,
यज्ञ, तप, वेदों का अध्ययन,
सत्य, दान और शान्ति, सरलता।

लज्जा, क्षमा, त्याग, दया,
क्रोध का अभाव, आत्म संयम,
तेज, धैर्य, अद्वेष इत्यादि,
देवी प्रकृति के हैं यह लक्षण। (1–3)

इसके विपरीत, हे कुन्तीनन्दन,
पाखण्ड, क्रोध, गर्व, अभिमान,
आसुरी प्रकृति वालों के लक्षण,
निःसंदेह निष्ठुरता व अज्ञान। (4)

मोक्ष के लिए देवी गुण हैं,
बन्धन हेतु आसुरी स्वभाव,
शोक मत कर, अर्जुन तुझमे,
जन्म से ही है देवी भाव। (5)

देवी व आसुरी दो प्रकार के,
जीव प्रकट होते जग में,
आसुरी जीवो का विवरण,
हे अर्जुन, अब सुन मुझसे। (6)

क्या नही, क्या करना है,
इसका भेद न होता उनमें,
ना शौच, ना सदाचार,
ना ही सत्य होता उनमें। (7)

वे कहते जग मिथ्या है,
बिना आश्रय या ईश्वर के,
नहीं अन्य इसका कारण,
कामजनित कहते वे इसे। (8)

होते उत्पन्न जगत नाश को,
अल्प बुद्धि वे ज्ञान रहित,
अपने क्रूर कर्मों द्वारा वे,
करते जग का सदा अहित। (9)

काम, दम्भ, मान आदि का,
आश्रय सदा वे लिए रहते हैं,
मोह वश आसक्त हुए वे,
दूषित कर्म करते रहते हैं। (10)

कामोपभोग परम लक्ष्य उनका,
अन्यायपूर्वक धन संचय करते,
नहीं अन्त चिंताओं का उनकी,
आशाओं में वे सदा बंधे रहते। (11–12)

आज यह धन प्राप्त किया,
कल वह मनोरथ सिद्ध करूंगा,
आज इस शत्रु को मारा,
कल उसका विनाश करूंगा।

ईश्वर, भोगी, धनवान हूं,
इसी ध्यान में मगन रहते,
यज्ञ, दान, आनन्द करूंगा,
अज्ञान वश मोहित रहते। (13–15)

Pentium (2) D\8.2.2007\Abi\Bhagvadgeeta\Bhagvadgeeta-2.p65

सदा रहते चिंता से ग्रस्त,
आसक्त हमेशा विषय भोग में,
मोह जाल में फसे बंधे ये,
पाते अपवित्र नरक अन्त में। (16)

अपने को ही श्रेष्ठ समझते,
धन, मान, मद से अंधे,
शास्त्रविधि के बिना ही वे,
नाम मात्र को यज्ञ करते। (17)

अंहकार, बल, काम, क्रोध,
इन सब के वश मे रहते,
अपने और औरों मे स्थित,
द्वेष मुझ परमेश्वर से करते। (18)

इन द्वेष करने वाले,
क्रूर कर्मी और नराधमों को,
देता हूं मैं भव सागर में,
सदा आसुरी ही योनियों को। (19)

जन्म–जन्म पा आसुरी योनि,
मुझ तक वे पहुंच नहीं पाते,
इस तरह बारम्बार वे मूढ़,
परम अधम गति को ही पाते। (20)

काम, क्रोध और लोभ मोह,
करते आत्मा का ही पतन,
नहीं योग्य बुद्धिमानो को,
अतः करना इनका सेवन। (21)

इन तीनों से मुक्त पुरूष,
आत्म कल्याण का साधन करता,
शनै–शनैः आत्मबुद्धि द्वारा,
परम गति वह प्राप्त करता। (22)

लेकिन शास्त्र विधि को त्याग,
इच्छानुसार जो आचरण करता,
ना सुख को, ना सिद्धि को,
ना ही परम गति को पा सकता। (23)

इसलिए कर्म–अकर्म निर्णय में,
निश्चय शास्त्र ही हैं प्रमाण,
तदानुसार कर्म करना चाहिए,
मुक्ति हेतु, शास्त्र विधि जान। (24)

Pentium (2) D\8.2.2007\Abi\Bhagvadgeeta\Bhagvadgeeta-2.p65

अध्याय – 17

श्रद्धात्रय विभाग योग

अर्जुन ने पूछा विधि रहित,
पर करते यज्ञ जो श्रद्धा से,
सत्व, रज या तम, इनमें,
भावित होते किस श्रद्धा से। (1)

भगवन बोले जीवों की,
श्रद्धा होती तीन प्रकार की,
उनके गुणों के ही अनुरूप,
सात्विकी, राजसी या तामसी। (2)

अपने अन्तःकरण के अनुरूप,
होती श्रद्धा जीव मात्र की,
यह जीव क्योंकि श्रद्धामय है,
जैसी श्रद्धा, वह वैसा ही। (3)

सात्विक श्रद्धालू देवों को पूजते,
राजस पूजते यक्ष–राक्षसों को,
तामस श्रद्धा पर जिनमें होती,
पूजते वे भूत–प्रेत आदि को। (4)

वेद विरूद्ध जो तप करते है,
अंहकार और आसक्ति के वश हो,
कष्ट पहुंचाते स्वयं को भी,
और मुझ अन्तर्यामी परमात्मा को। (5–6)

होता प्रकृति के अनुसार प्रिय,
आहार सबको तीन प्रकार का,
वैसे ही यज्ञ, तप और दान,
होता यह भी तीन प्रकार का। (7)

सात्विक मनुष्य को प्रिय होते,
आहार रसमय वृद्धि देने वाले,
आयु, शुद्धि, आरोग्य सुख देते,
हृदय को प्रिय लगने वाले। (8)

राजस मनुष्य को प्रिय होते,
आहार दाहकारी और रुखे,
रोग, शोक, दुख देने वाले,
कडुवे, खट्टे, गरम व तीखे। (9)

भोजन से एक प्रहर पहले,
बना हुआ भोजन बासी,
दुर्गंधित, नीरस और अपवित्र
आहार पसंद करते तामसी। (10)

सात्विक यज्ञ वह यज्ञ है,
विधि अनुसार जो किया जाता,
फल की इच्छा से रहित,
कर्तव्य मान जो किया जाता। (11)

लेकिन इच्छा से फल की,
पाने को कुछ लौकिक लाभ,
किया जाता जिस यज्ञ को,
हे अर्जुन, उसे राजस जान। (12)

शास्त्र विधि के विरूद्ध यज्ञ,
प्रसाद वितरण जिसमें नहीं होता,
वेद मन्त्र, दक्षिणा से रहित,
श्रद्धाशुन्य यज्ञ वह तामसी होता। (13)

श्री भगवान, गुरु और ब्राह्मण,
अन्य वेदज्ञ पुरुषों का पूजन,
पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य, अहिंसा,
शारीरिक तप हैं, हे अर्जुन। (14)

हितकारी भाषण, वेदाध्ययन,
प्रिय, सत्य व विनम्र शब्द,
नित्य करना इनका अभ्यास,
कहलाता है वाणी का तप। (15)

मन की प्रसन्नता, आत्म संयम,
भाव शुद्धि, व्यवहार निष्कपट,
गम्भीरता आदि का अभ्यास,
कहलाता है यह मन का तप। (12)

श्रद्धासहित, निष्काम भाव से,
प्रभु की प्रसन्नता के लिए,
ये तीनों हैं सात्विक तप,
एकाग्र चित से किए गए। (13)

सत्कार, मान, अर्चना हेतु,
दम्भपूर्वक जो किया जाता,
अनित्य व क्षणिक फल वाला,
राजसी तप वह कहा जाता। (14)

विवेक रहित, दुराग्रह पूर्वक,
पीड़ा सह जो किया जाता,
करने हेतु औरों का विनाश,
तप तामसी वह कहा जाता। (19)

प्रत्युपकार की इच्छा बिना,
कर्तव्य रुप जो दिया जाता,
योग्य देश काल में सत्पात्र को,
दान सात्विक वह कहा जाता। (20)

प्रत्युपकार की आशा या जो,
कुछ पाने हेतु दिया जाता,
क्लेशपूर्वक दिया गया दान,
राजस दान वह कहा जाता। (21)

बिना बिचारे देश काल,
तिरस्कार पूर्वक दिया दान,
अपात्र को सम्मान के बिना,
कहलाता वह तामसी दान। (22)

ब्रह्म तत्त्व के वाचक हैं ये,
तीन शब्द, ऊँ, तत्, सत्,
आदि काल में हुए इनसे,
ब्राह्मण, वेद व यज्ञ प्रकट। (23)

करते इसलिए योगी उच्चारण,
सर्वप्रथम शब्द औंकार का,
उसके बाद ही करते प्रारम्भ,
वे यज्ञ,तप आदि क्रियाओं का। (24)

'तत्' शब्द का उच्चारण कर,
फल की इच्छा के बिना,
की जाती मुमुक्ष पुरुषों द्वारा,
यज्ञ, तप आदि सभी क्रिया। (25)

परब्रह्म व भक्ति के भाव में,
'सत्' शब्द प्रयोग किया जाता,
यज्ञ, तप दान हेतु पुरुषार्थ,
सत कर्म उसे कहा जाता। (26–27)

इसके विपरीत बिना श्रद्धा के,
करते जो कार्य, असत कहलाता,
इस लोक में या मृत्यु के बाद,
भला नहीं कुछ, इससे हो पाता। (28)

Pentium (2) D\8.2.2007\Abi\Bhagvadgeeta\Bhagvadgeeta-2.p65

अध्याय – 18

मोक्ष संन्यास योग

बोला अर्जुन तब श्री कृष्ण से,
हे ऋषिकेश, कृपया बतलायें,
संन्यास और त्याग दोनों का,
तत्त्व अलग–अलग समझायें। (1)

भगवन बोले सकाम कर्मों के,
त्याग को कहते हैं सन्यास,
और कर्मफल समर्पण को,
ज्ञानी पुरुष कहते हैं त्याग। (2)

कुछ कहते दोषयुक्त होने से,
सभी कर्म हैं त्यागने योग्य,
कुछ कहते यज्ञ, तप आदि,
कदापि नहीं हैं त्यागने योग्य। (3)

त्याग के विषय में अब,
तू मेरे निश्चय को सुन,
तीन प्रकार का है वर्णित,
त्याग शास्त्रों में, अर्जुन। (4)

कर्तव्य हैं यज्ञ, तप आदि,
कदापि त्यागने योग्य नहीं,
कर देते हैं ये तो पावन,
मनीषियों के चित्त को भी। (5)

चाहिए ये कर्म भी करने,
लेकिन आसक्ति को त्याग,
फल की इच्छा के बिना,
मेरे मत में कर्तव्य मान। (6)

योग्य नहीं कभी भी लेकिन,
शास्त्र विहित कर्म का त्याग,
मोह वश छोड़ देना इनको,
कहलाता है वह तामस त्याग। (7)

देह कष्ट के भय से या जो,
दुख रुप समझ कर्म त्यागता,
राजस त्याग करके भी वह,
नहीं त्याग का फल पाता। (8)

कर्तापन का अभिमान छोड़कर,
नियत कर्म पर जो करता,
फल की आसक्ति से रहित,
त्याग सात्विक वह कहलाता। (9)

न द्वेष करता दुखद कर्म से,
सुखद में न होता आसक्त,
सत्य लीन स्थिर बुद्धि वह,
हो जाता संशयों से मुक्त। (10)

असंभव है पर देहबद्ध जीव का,
पूर्ण रूप से करना कर्म त्याग,
इसलिए वही सच्चा त्यागी है,
जिसने किया कर्मफल का त्याग। (11)

फल की इच्छा करने वालों को,
सुख–दुख आदि भोगना पड़ता,
कर्मफल त्यागी पुरुषों को पर,
नहीं कर्मफल भोगना पड़ता। (12)

Pentium (2) D\8.2.2007\Abi\Bhagvadgeeta\Bhagvadgeeta-2.p65

सांख्य में वर्णित हैं, हे अर्जुन,
कर्म सिद्धि के पांच कारण,
शरीर, चेष्टा, प्रेरक अन्तर्यामी,
कर्ता व इन्द्रिय रुप करण। (13–14)

जो भी करता है मनुष्य,
मन, वाणी और शरीर से,
धर्ममय या विपरीत कर्म,
ये ही पांच हेतु हैं उसके। (15)

लेकिन अशुद्ध बुद्धि के कारण,
आत्मा को जो कर्ता जानता,
निःसन्देह जान उसे अज्ञानी,
तत्त्व से वह नहीं जानता। (16)

मिथ्या अहंकार नहीं जिसमें,
बुद्धि होती लिप्त नहीं,
मारता नहीं मारकर भी,
कर्म से वह बंधता नहीं। (17)

ज्ञान, ज्ञेय व जानने वाला,
प्रेरक हैं ये तीन कर्म के,
इन्द्रियां, कर्म तथा कर्ता,
आधार हैं ये तीन कर्म के। (18)

प्रकृति के गुणों के अनुसार,
तीन–तीन भेद, हे अर्जुन,
ज्ञान, कर्म तथा कर्ता के,
कहे गए हैं, उनको भी सुन। (19)

सब परस्पर विभक्त प्राणियों में,
एक परा प्रकृति विभाग रहित,
दिखती है जिस ज्ञान द्वारा,
उस ज्ञान को तू जान सात्विक। (20)

नाना प्रकार के देहों में,
विविध प्रकार के जीवों को,
स्थित देखता जिस ज्ञान से,
राजस जान उस ज्ञान को। (21)

एक ही कर्म में पूर्णतया,
रहता जिसके कारण आसक्त,
तत्त्व से रहित, तुच्छ अति,
जान उस ज्ञान को तू तामस। (22)

आसक्ति व रागद्वेष रहित हो,
करता है जो नियत कर्म,
फल की इच्छा के बिना,
कहलाता वह सात्विक कर्म। (23)

मिथ्या अहंकार के वशीभूत,
क्लेशपूर्वक जो किया जाता,
अपनी ही इच्छा के लिए,
राजस कर्म वह कहा जाता। (24)

धर्म हानि व अपना सामर्थ्य,
बिचारे बिना जो किया जाता,
होता बन्धनकारी और हिंसक,
कर्म तामसी वह कहा जाता। (25)

उदासीन कर्म सिद्धि–असिद्धि में,
आसक्ति और अहंकार से मुक्त,
सात्विक कर्त्ता वह जो रहता,
धैर्य और दृढ़ उत्साह से युक्त। (26)

हर्ष और शोक से चलायमान,
लोभी कर्मफल में आसक्त,
राजस कर्ता वह जो रहता,
अपवित्र और द्वेष से युक्त। (27)

Pentium (2) D\8.2.2007\Abi\Bhagvadgeeta\Bhagvadgeeta-2.p65

विषादी, आलसी, दीर्घसुत्री,
विषयी, हठी, कपट से युक्त,
तामस कर्ता वह जो रहता,
शास्त्र विरुद्ध कर्म में युक्त। (28)

तीनों गुणों के अनुसार,
बोले भगवन, हे अर्जुन,
बुद्धि और धृति इनके भी,
भेदों को अब मुझसे सुन। (29)

भेद जानती जो कर्म–अकर्म में,
भय–अभय, मुक्ति बन्धन में,
सात्विकी बुद्धि वह कहलाती,
विवेक जिसे प्रवृत्ति–निवृत्ति में। (30)

राजसी बुद्धि वह कहलाती,
विवेक हीन जो धर्म–अधर्म में,
भेद नहीं कर पाती भलीभांति,
जो कर्तव्य और अकर्तव्य में। (31)

मोहवश जो अधर्म धर्म को,
और अधर्म को धर्म समझती,
लगी रहती विपरीत राह में,
कही जाती बुद्धि वह तामसी। (32)

धारते जो योगाभ्यास से,
अचल और अनन्य धृति,
कर वश में मन प्राणादि,
होती वह सात्विकी धृति। (33)

राजसी धृति से होती है,
आसक्ति धर्म–अर्थादि में,
भय, शौक, मोह इत्यादि,
होते ये तामसी धृति में। (34–35)

तीन प्रकार के सुख होते हैं,
सुन उनका भी वर्णन तू मुझसे,
जिसमें अभ्यास से सुख होता,
दुःख की निवृति होती जिससे (36)

पहले विष जैसा लगता जो,
पर होता अमृत के समान,
आत्मिक विकास होता जिससे,
उसे सात्विक सुख तू मान (37)

पहले लगता अमृत सरीखा,
विष तुल्य लेकिन परिणाम,
विषय व इन्द्रिय संयोग से,
राजस सुख होना उसे जान। (38)

आरम्भ में और परिणाम में भी,
लोप आत्म चेतना का करता,
होता निद्रा, आलस्य, प्रमाद से,
सुख वह तामस कहा जाता। (39)

नहीं कहीं कोई भी प्राणी,
जो हो इन त्रिगुणों से रहित,
गुणों के अनुसार अतः वर्णों के,
किए गए हैं कर्म विभाजित। (40–41)

ब्राह्मणों के स्वाभाविक कर्म हैं,
शान्ति, आत्म संयम, पवित्रता,
ज्ञान–विज्ञान, भक्ति, विश्वास,
सत्य में निष्ठा और सहिष्णुता। (42)

क्षत्रिय का स्वभाविक कर्म है,
युद्ध में कभी पलायन न करना,
पराक्रम, तेज, दृढ़ता, सूझबूझ,
नेतृत्व, दान, प्रजा पालन करना। (43)

कृषि, गौरक्षा और व्यापार,
वैश्य का स्वाभाविक कर्म है,
और दूसरों की सेवा करना,
शुद्रों का भी सहज कर्म है। (44)

जन्में जिस परमेश्वर से प्राणी,
सम्पूर्ण जगत है जिनसे व्याप्त,
स्वाभाविक कर्म से उसे पूजकर,
मनुष्य संसिद्धि कर लेता प्राप्त।

अन्य का कर्म भलीभांति करने से,
श्रेष्ठ स्वधर्म पालन त्रुटिपूर्ण भी,
स्वाभावानुसार नियत कर्म करने से,
नहीं प्राप्त होता है पाप कभी। (45–47)

धुएं से अग्नि के समान,
कर्म दोष से ढके हैं सभी,
अतः त्यागने नहीं चाहिए,
सहज कर्म दोष होने पर भी। (48)

आत्म संयम का अभ्यास करने से,
त्यागने से प्राकृत सुख व आसक्ति,
सन्यास का फल प्राप्त होता है,
यही सन्यास की है परम संसिद्धि। (49)

सिद्धि को प्राप्त हुआ पुरुष,
कैसे प्राप्त ब्रह्म को होता,
संक्षेप में सुन अब मुझसे,
ज्ञान की वह दिव्य अवस्था। (50)

सात्विक धारणा द्वारा, विशुद्ध बुद्धि से,
मन वश में कर, विषयों को त्याग,
अल्प आहार, मन वाणी संयम कर,
निर्जन में रहता, राग द्वेष को त्याग। (51)

ध्यान योग रुप समाधि में निमन्न,
ममता रहित और शान्त हो जाता,
त्याग काम, क्रोध, अहंकार आदि,
स्वरुप साक्षात्कार योग्य हो जाता। (51–53)

परब्रह्म की अनुभूति करता,
उसे न इच्छा होती न शौक,
सब जीवों में रखता समभाव,
पा जाता वह मेरा भक्तियोग। (54)

तत्त्व से मुझ पुरुषोत्तम को,
भक्ति से ही जाना जा सकता,
पूर्ण रुप से जान मुझे वह,
अविलम्ब मुझमें प्रवेश पा जाता। (55)

मेरा आश्रित निष्काम भक्त,
सब कर्मों को करता हुआ भी,
मेरी कृपा से पा जाता है,
परमधाम सनातन, अविनाशी। (56)

चित्त से सम्पूर्ण कर्मों को,
कर निरन्तर मेरे ही अर्पण,
मेरे परायण हो भक्ति योग में,
नित्य कर मेरा ही स्मरण। (57)

मेरे स्मरण में लीन होकर,
सब बाधाओं को तर जाएगा,
अहंकार वश यदि नहीं मानेगा,
निश्चित ही नष्ट हो जाएगा। (58)

अहंकार वश यदि तू यह समझता,
मेरी अवज्ञा कर युद्ध नहीं करेगा,
मिथ्या निश्चय है तेरा जान ले,
प्रकृति वश होकर तू युद्ध करेगा। (59)

Pentium (2) D\8.2.2007\Abi\Bhagvadgeeta\Bhagvadgeeta-2.p65

मोह वश मेरी आज्ञानुसार,
जिस कर्म को तू नहीं करेगा,
अपने स्वभाव के वश होकर,
वही कर्म हे अर्जुन, तू करेगा। (60)

प्राणी मात्र के हृदय में बैठा,
परमेश्वर वह घूमा रहा,
देह स्थित सब जीवों को,
अपनी माया शक्ति द्वारा। (61)

इसलिए सब प्रकार से, अर्जुन,
उसी परमेश्वर की शरण में जा,
उसकी कृपा से परम शान्ति व,
सनातन धाम को तू जाएगा पा। (62)

तेरे लिए कहा इस प्रकार,
गोपनीय यह ज्ञान परम,
फिर जैसी इच्छा हो, कर,
पूर्ण रुप से करके मनन। (63)

परम गोपनीय मेरे सार वचन,
कहता हूं तुझे फिर से सुन,
तू मेरा अतिशय प्रिय है,
इसलिए कहता हूं, अर्जुन। (64)

प्रेम सहित मेरा पूजन कर,
मुझमें ही मन वाला हो,
सत्य प्रतिज्ञा करता हूं तुझसे,
मुझे पाएगा मेरा भक्त हो। (65)

त्याग कर सब धर्मों को,
ले शरण मेरी अनन्य भाव से,
तू शौक मत कर, मैं तुझे,
तार दूंगा सब पाप से। (66)

नहीं ज्ञान यह कहना चाहिए,
तप रहित अथवा अभक्त को,
सुनाना नहीं चाहिए उसको भी,
जिसे द्वेष मुझ परमेश्वर से हो। (67)

परम गोपनीय यह रहस्य,
भक्तों के लिए जो भी कहेगा,
भक्ति योग पाएगा निश्चित,
मेरे पास वह लौट आएगा। (68)

उससे अधिक प्रिय मुझे,
नहीं कोई सेवक जग में,
ना ही उससे बढ़कर कभी,
होगा कोई इस जग में। (69)

इस हमारे पावन संवाद का,
जो कोई भी पाठ करेगा,
उसके द्वारा, घोषित करता हूं,
ज्ञान यज्ञ से मैं पूजित हूंगा। (70)

श्रद्धा भाव से द्वेष रहित हो,
जो यह ज्ञान श्रवण करेगा,
मुक्त हो वह भी पापों से,
पूण्य लोकों को प्राप्त करेगा। (71)

पूछा भगवन ने क्या तूने,
एकाग्रचित्त हो यह शास्त्र सुना,
हे अर्जुन, इससे क्या तेरा,
अज्ञान और मोह नष्ट हो गया? (72)

अर्जुन बोला, मोह नष्ट हो,
मुझे स्मृति फिर प्राप्त हो गयी,
संशय मुक्त हो दृढ़ता से,
पालन करुंगा अब आज्ञा आपकी। (73)

संजय बोला इस प्रकार मैंने,
भगवान श्रीकृष्ण और अर्जुन का,
परम अद्‌भुत और रोमांचकारी,
अति पावन यह संवाद सुना। (74)

श्री व्यासदेव की परम कृपा से,
परम गोपनीय इस योग को,
अर्जुन से स्वयं कहते सुना,
मैंने योगेश्वर श्रीकृष्ण को। (75)

हे राजन, श्रीकृष्ण, अर्जुन के,
इस परम पावन संवाद को,
बारम्बार स्मरण कर पाता हूं,
मैं प्रतिक्षण हर्ष व रोमांच को। (76)

स्मरण कर बारम्बार वह रुप,
परम अद्‌भुत श्री भगवान का,
महान आश्चर्य होता है मुझको,
पुनः पुनः मुझे हर्ष हो रहा। (77)

साक्षात योगेश्वर श्रीकृष्ण और,
गाण्डीव धारी अर्जुन हैं जहां,
समस्त श्री, शक्ति, नीति व विजय,
मेरे मत में सर्वस्व हैं वहां। (78)

— ॐ —

Pentium (2) D\8.2.2007\Abi\Bhagvadgeeta\Bhagvadgeeta-2.p65

पुस्तक परिचय

श्रीमद्भगवदगीता एक अनूठा ग्रन्थ है जो अपने में समस्त आध्यात्मिक ज्ञान का सार–निचोड़ समाहित किये हुये है।

यों तो घर घर में श्रीमद्भगवदगीता प्रायः उपलब्ध रहती है, लेकिन क्लिष्ठता और संस्कृत भाषा में होने के कारण साधारण जन कम ही इसके अध्ययन में रुचि लेते हैं। इस पुस्तक का उद्देश्य श्रीमद्भगवदगीता को सरल, जन जन की भाषा में प्रस्तुत करना है जिसे पाठक सुगमता से पढ़कर हृदयंगम कर सकें।

श्रीमद्भगवदगीता के अट्ठारह अध्यायों में 700 श्लोक हैं जिनका इस पुस्तक में 633 श्लोकों में पदानुवाद हुआ है। कहीं कहीं पर एक से अधिक श्लोकों का अनुवाद एक ही श्लोक में बन पड़ा है और कहीं पर इसके विपरीत एक श्लोक का अनुवाद एक से अधिक पदों में।

जहां तक संभव हुआ मूल श्लोकों के अर्थ को यथा रूप प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है, साथ ही भाषा के चयन में साधारणतया प्रचलित शब्दों का प्रयोग करने पर जोर दिया गया है ताकि अपनी सहजता के कारण ये पद पाठकों के हृदय में बस जाऐं।

श्रीमद्भगवदगीता में कर्म, ज्ञान एवं भक्ति सभी की विषद विवेचना कर योगेश्वर श्रीकृष्ण महाराज ने प्रेम (भक्ति) की सर्वोपरिता को निम्न पदों में स्थापित कर गीता का उपसंहार किया है :

प्रेम सहित मेरा पूजन कर,
मुझमें ही मन वाला हो,
सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ तुझसे,
मुझे पाएगा मेरा भक्त हो।

त्याग कर सब धर्मों को,
ले शरण मेरी अनन्य भाव से,
तू शोक मत कर, मैं तुझे,
तार दूंगा सब पाप से।

लेखक परिचय

परमसंत ठाकुर रामसिंह जी (1898–1971) नक्शबंदी सूफी परम्परा के एक ऐसे महान संत हुए हैं जिन्होंने श्रीमद्भगवदगीता को अपने जीवन में पूर्णतया आत्मसात कर लिया था। उनका आचरण श्रीमद्भगवदगीता का एक जीता जागता उदाहरण था। वे तत्कालीन जयपुर राज्य के पुलिस विभाग में कार्यरत थे और अपनी इमानदारी, कर्तव्यनिष्ठा और उस परमसत्ता पर अटूट विश्वास के कारण अपने सेवाकाल में ही वे एक किंवदंती बन गए थे।

लेखक श्री राजेन्द्र कुमार गुप्ता उनके कृपापात्र सेवक हैं। उनके पिता डा. चन्द्र गुप्ता जो स्वयं भी नक्शबंदी परम्परा के सूफी संत थे, उन्हें किशोर अवस्था (1966) में ही मात्र 15 वर्ष की आयु में ठाकुर रामसिंह जी की शरण में ले गए। प्रथम दृष्टि में ही प्रेम के अथाह सागर, ठाकुर रामसिंह जी ने अपनी कृपा का बीजारोपण लेखक के हृदय में कर दिया। सन 1966 से 1971 तक लेखक को उनके श्रीचरणों में बैठने का सौभाग्य मिला और उसके उपरांत उन्हें अपने पिता का आध्यात्मिक संरक्षण प्राप्त हुआ।

सन 2001 में लेखक की प्रथम पुस्तक 'Yogis in Silence - The Great Sufi Masters' प्रकाशित हुई जो भारत में नक्शबंदी सूफी परम्परा के प्रादुर्भाव एवं नक्शबंदी सूफी संतों की जीवनी व उनके उपदेशों की एक झलक प्रस्तुत करती है। 'Sufism Beyond Religion', 'प्रेम प्रवर्तक सूफी', 'The Science and Philosophy of Spirituality' एवं 'सूफी संत मत – दर्शन एवं विज्ञान' उनकी अन्य पुस्तकें हैं।

प्रकाशक : BRPC Ltd., दरियागंज, दिल्ली
फोन : 011–23259196
e-mail : brpcltdedel2.vsnl.net.in

Pentium (2) D\8.2.2007\Abi\Bhagvadgeet a\Bhagvadgeet a-2.p65